

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 7 अध्याय 4: प्रह्लाद का जन्म

14 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



उसने सूर्य और वायु, समुद्र और आकाश जीत लिए हैं; लोकों के अधिपति हाथ जोड़े उसकी सेवा करते हैं; अन्ततः वह स्वयं इन्द्र के सिंहासन पर बैठ जाता है। और फिर भी वह सन्तुष्ट नहीं — क्योंकि जिस एक शत्रु को वह नहीं जीत सकता, वह है उसके अपने हृदय की बेचैनी।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विङ्गडम् में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में असुर-राज हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा से एक चतुराई से गढ़ा गया वरदान पाया था जो उसे मृत्यु की पहुँच से परे रखता-सा प्रतीत होता था। यह चतुर्थ अध्याय उसे उस शक्ति की पराकाष्ठा तक ले जाता है, और उसी घर में उस पुत्र का परिचय कराता है जिसकी भक्ति उसका उत्तर

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 7 (सप्तम स्कन्ध)
- अध्याय: 4
- अध्याय-शीर्षक: हिरण्यकशिपु का ब्रह्माण्ड पर आतंक और प्रह्लाद का जन्म
- मुख्य वक्ता: देवर्षि नारद (सम्राट युधिष्ठिर को कथा सुनाते हुए); कथा के भीतर, ब्रह्मा तथा आकाशवाणी के रूप में स्वयं भगवान् की वाणी
- मुख्य श्रोता: सम्राट युधिष्ठिर; कथा के भीतर, हिरण्यकशिपु तथा एकत्रित देवता
- मुख्य स्थान: हिरण्यकशिपु द्वारा विजित तीनों लोक; इन्द्र का दिव्य महल; तथा वह धाम जहाँ भयभीत देवता भगवान् विष्णु से प्रार्थना करते हैं
- मुख्य विषय-वस्तु: हिरण्यकशिपु की समस्त ब्रह्माण्ड पर पूर्ण विजय तथा अत्याचार, भगवान् का उद्धार-वचन, और प्रह्लाद का जन्म तथा उसके सन्त-गुण
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 7, अध्याय 4, श्लोक 1-46
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पूर्ण हुआ वरदान, फिर जागा वैर

नारद पुनः अपनी कथा आरम्भ करते हैं। हिरण्यकशिपु की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे वे वरदान दिए जिन्हें पाना किसी भी प्राणी के लिए अत्यन्त कठिन है, और फिर असुर द्वारा पूजित तथा सृष्टि के अधिपतियों द्वारा स्तुत होकर अपने धाम को लौट गए। अब अजेय तथा स्वर्णिम तेज की देह धारण किए हुए भी हिरण्यकशिपु नरम न पड़ा। वह भगवान् के प्रति अपना पुराना वैर पालता रहा, अपने छोटे भाई हिरण्यक्ष की श्रीहरी के हाथों हुई मृत्यु का निरन्तर स्मरण करता रहा, और अपनी समस्त नवीन शक्ति को प्रतिशोध तथा आधिपत्य की ओर मोड़ दिया।

तीनों लोकों की विजय

फिर जो हुआ वह अद्वितीय विजय थी। हिरण्यकशिपु ने समस्त दिशाओं तथा तीनों लोकों — स्वर्ग, पृथ्वी तथा मध्य के प्रदेश — को वश में कर लिया। उसने देवताओं तथा असुरों, मनुष्यों के शासकों, गन्धर्वों तथा नागों, सिद्धों, चारणों तथा विद्याधरों, ऋषियों तथा मनुष्य-जाति के प्रवर्तकों, यक्षों के अधिपतियों तथा प्रत्येक प्राणी-वर्ग के नायकों को अपने अधीन कर लिया। समस्त ब्रह्माण्ड को जीतकर उसने लोकपालों के सिंहासन तथा ऐश्वर्य स्वयं हड़प लिए।

वह स्वर्ग में, विश्वकर्मा द्वारा निर्मित इन्द्र के उसी महल में जा बसा — वह भवन जो मूँगे की सीढ़ियों, मरकत के फर्शों, स्फटिक की दीवारों तथा वैदूर्य मणि के स्तम्भों, अद्भुत रचना के चँदों तथा माणिक्य के सिंहासनों से सुशोभित था। वहाँ वह अभिमानी असुर लोकों के एकमात्र सम्राट के रूप में विलास करता रहा, उसके चरणों की सेवा उन्हीं देवताओं द्वारा होती थी जिन्हें उसने सताया था। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को छोड़कर

समस्त लोकपाल हाथ में भेंट लिए उसकी सेवा में उपस्थित रहते। पृथ्वी बिना जोते ही अपनी उपज देती, स्वर्ग हर वांछित वस्तु बरसाता, समुद्र अपनी लहरों पर रत्नों के ढेर लाते, और पर्वत तथा वृक्ष हर ऋतु में उसे फूल तथा फल देते। उसने ब्रह्माण्ड के समस्त लोकपालों की शक्तियाँ अपने एक ही हाथ में समेट ली थीं।



असुर के अत्याचार से असह्य रूप से पीड़ित होकर समस्त लोकों के प्राणी तथा उनके अधिष्ठाता देवता भगवान् विष्णु की शरण लेते हैं, जो आकाश से एक अशरीरी वाणी द्वारा उन्हें आश्वासन देते हैं (SB 7.4.21-28)।

शक्ति, पर शान्ति नहीं

और फिर भी, अध्याय हमें बताता है कि समस्त लोकों का यह स्वामी कोई सन्तोष न पा सका। अपने प्रिय विषयों को ठीक अपनी इच्छानुसार भोगते हुए भी उसे तनिक भी तृप्ति न मिली — क्योंकि उसने कभी अपनी इन्द्रियों तथा मन को वश में नहीं किया था। तीव्र गन्ध वाली मदिरा से मत्त, उसकी लाल आँखें सदा घूमती रहतीं, वह लौह-हस्त से शासन करता, अभिमानी तथा अराजक, वेदों-शास्त्रों की भी अवहेलना करता। यहाँ भागवत अपना मौन विरोधाभास खींचता है: बाहर सब कुछ की विजय, भीतर किसी की नहीं। जो अत्याचारी समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी है, वह अपनी ही तृष्णाओं का दास है।

लोक पुकारते हैं, और भगवान् उत्तर देते हैं

उसके शासन को सह न पाने पर तथा अन्यत्र कोई शरण न पाकर, समस्त लोकों के निवासी अपने अधिष्ठाता देवताओं सहित रक्षा के लिए अविनाशी भगवान् विष्णु की ओर मुड़े। शुद्ध तथा संयमित मन से, निद्रा त्यागकर तथा केवल वायु पर निर्वाह करते हुए, उन्होंने एक प्राचीन प्रार्थना से उनकी उपासना की, उस धाम को प्रणाम करते हुए जहाँ श्रीहरि निवास करते हैं, जहाँ से शुद्ध हृदय वाले मर्त्यलोक में पुनः नहीं लौटते।

तब बादलों की गर्जना-सी गम्भीर एक वाणी, जिसका कोई दृश्य रूप न था, दिशाओं को भरती हुई गूँजी और धर्मात्माओं को आश्वासन दिया। “मत डरो, हे देवश्रेष्ठो; तुम सबका कल्याण हो,” उसने कहा। भगवान् ने घोषित किया कि वे इस नीच असुर की दुष्टता को पहले से ही जानते हैं और उसका अवश्य अन्त करेंगे; उन्हें केवल प्रतीक्षा करनी है। जब देवताओं, वेदों, गौ, ब्राह्मणों, सन्तों, स्वयं धर्म तथा भगवान् के प्रति द्वेष किसी हृदय में जड़ पकड़ लेता है, उन्होंने कहा, तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। और फिर उन्होंने असुर के पतन की घड़ी बताई:

निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने ।
प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥ २८ ॥

nirvairāya praśāntāya sva-sutāya mahātmane prahrādāya yadā druhyed dhaniṣye 'pi varorjitam

अर्थ: जब वह असुर अपने ही पुत्र प्रह्लाद के प्रति वैर करेगा — जो समस्त द्वेष से रहित एक महान आत्मा तथा पूर्णतः शान्त है — तब, अपने अर्जित वरदानों से बलवान होने पर भी, मैं उसका वध करूँगा। (SB 7.4.28)

यहाँ भागवत कृपा तथा अपराध के विषय में अपने सबसे गहन बिन्दुओं में से एक को चुपचाप प्रकट करता है। हिरण्यकशिपु ने अपनी शक्ति उग्रतम तपस्या द्वारा ब्रह्मा से अर्जित की थी, जो उसे मानो हर साधारण संकट से परे रखती थी। फिर भी भगवान् के अपने वचन दिखाते हैं कि कोई भी वरदान, चाहे कितनी ही कठिनाई से अर्जित हो, उस आत्मा की रक्षा नहीं कर सकता जो एक शुद्ध भक्त के विरुद्ध मुड़ जाए। जिस क्षण हिरण्यकशिपु अपनी क्रूरता प्रह्लाद पर निर्देशित करता है, ब्रह्मा का हर वरदान उस भगवान् के समक्ष व्यर्थ हो जाता है जो अपने भक्त की रक्षा करते हैं। भौतिक शक्ति तथा ऐश्वर्य ऐसे वरदान हैं जिन्हें क्षण भर में वापस लिया जा सकता है; परन्तु जिस हृदय को भगवान् स्वयं महान कहें, उसे कोई स्पर्श नहीं कर सकता। यही कारण है कि किसी भक्त के प्रति किया गया अपराध सबसे गम्भीर पतनों में गिना जाता है, और यही कारण है कि भगवान्, बड़े से बड़े पापियों के प्रति भी धैर्यवान रहते हुए भी, प्रह्लाद पर संकट आते ही बिना विलम्ब के कार्य करते हैं (श्लोक 27-28)।

इन वचनों से आश्चस्त होकर तथा भगवान् को प्रणाम करके देवता निश्चिन्त होकर लौट गए, और असुर को पहले ही मारा हुआ मान लिया।

अन्धकार के घर में एक दीप्त शिशु

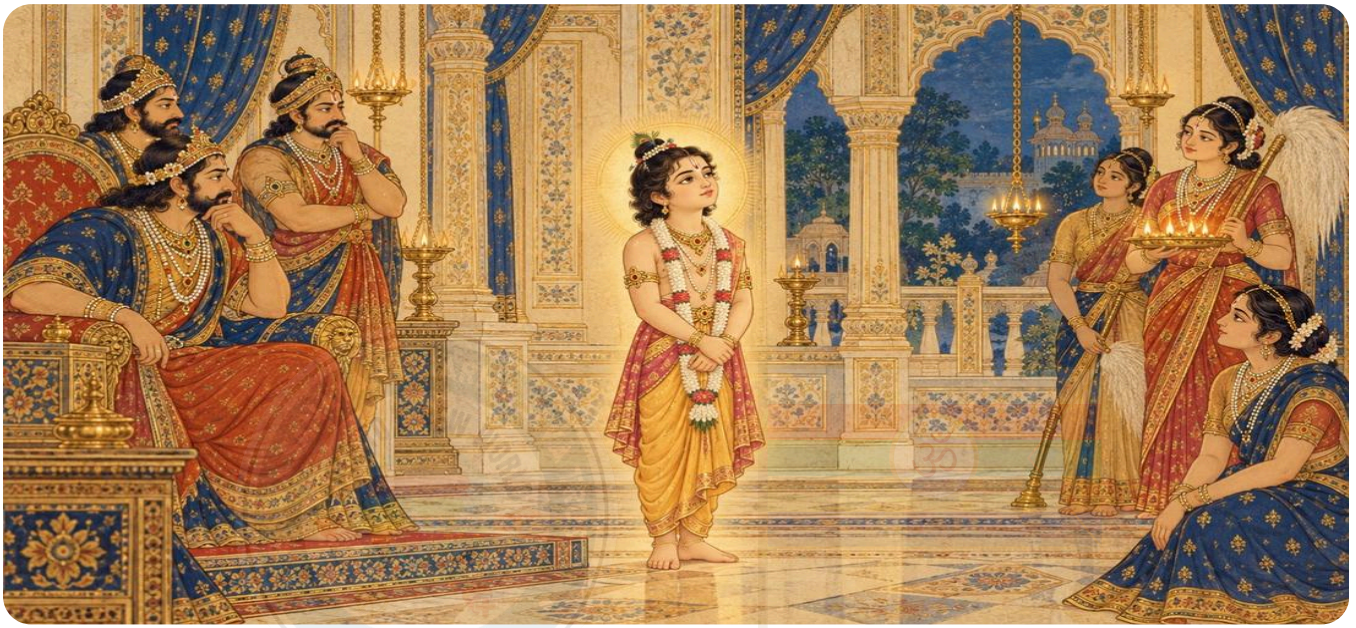
दैत्यराज के चार पुत्र हुए, और उनमें एक ऐसे गुण से चमका जिसकी दूसरे बराबरी न कर सके: प्रह्लाद, महात्माओं का प्रेमी तथा उत्तम गुणों का भण्डार। ब्राह्मणों के प्रति समर्पित, कोमल, सत्यनिष्ठ तथा इन्द्रिय-विजयी, वह प्रत्येक प्राणी का प्रियतम मित्र तथा सच्चा हितैषी था, जिन्हें वह अपने ही समान समझता था।

ब्रह्मण्यः शीलसम्पन्नः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
आत्मवत्सर्वभूतानामेकप्रियसुहृत्तमः ।
दासवत्सन्नतार्याङ्घ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः ॥ ३१ ॥
भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः ।
विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः ॥ ३२ ॥

brahmaṇyaḥ śīla-sampannaḥ satya-sandho jitendriyaḥ ātmavat sarva-bhūtānām eka-priya-suhṛttamaḥ dāsavat sannatāryāṅghriḥ pitṛvad dīna-vatsalaḥ bhrātṛvat sadṛśe snigdho guruṣv īśvara-bhāvanaḥ vidyārtha-rūpa-janmāḍhyo māna-stambha-vivarjitaḥ

अर्थ: ब्राह्मणों के प्रति समर्पित, उत्तम शीलवान, सत्यनिष्ठ तथा जितेन्द्रिय, वह समस्त प्राणियों को अपने ही समान मानकर उनका प्रियतम मित्र था। सेवक के समान वह सत्पुरुषों के चरणों में झुकता; पिता के समान दीनों पर वत्सल था; भाई के समान अपने समवयस्कों से स्नेह करता; और अपने गुरुजनों को साक्षात् ईश्वर मानता। विद्या, धन, रूप तथा उच्च जन्म से सम्पन्न होते हुए भी वह अभिमान तथा दर्प से सर्वथा रहित था। (SB 7.4.31-32)

विपत्ति में भी अविचल, देखे या सुने हुए विषय-भोगों के प्रति उदासीन, उसने न केवल अपनी इन्द्रियों तथा प्राणों, अपितु अपनी वासनाओं को भी जीत लिया था; और असुर-कुल में जन्म लेकर भी उसने असुर-स्वभाव को पूर्णतः त्याग दिया था। नारद युधिष्ठिर से कहते हैं कि उसके गुण आज भी विद्वानों द्वारा संजोए जाते हैं, युगों के बीत जाने पर भी अम्लान।



असुर-राज के अपने ही घर में प्रह्लाद जन्म लेता है — दुर्लभ गुणों का एक शिशु, ईश्वर के प्रति समर्पित तथा समस्त प्राणियों पर कोमल, यद्यपि जन्म से असुर (SB 7.4.30-34)।

ईश्वर-प्रेम में लीन

अपने बचपन से ही प्रह्लाद का हृदय भगवान् द्वारा हर लिया गया था। उसका मन कृष्ण द्वारा इतना पूर्णतः ग्रस्त था कि वह संसार में मानो जड़-सा विचरता, जीवन के साधारण व्यापारों से अनजान।

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया ।

कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥ ३७ ॥

nyasta-kṛīḍanako bālo jaḍavat tan-manastayā kṛṣṇa-graha-gṛhītātmā na veda jagad īdṛśam

अर्थ: अपने खेलौनों को छोड़कर वह बालक — मन इतना पूर्णतः लीन, स्वयं मानो कृष्ण द्वारा ग्रस्त तथा अधिकृत — संसार के प्रति उदासीन-सा हो गया और अपने चारों ओर के जगत् को अब देखता ही न था। (SB 7.4.37)

बैठे या चलते, खाते या लेटते, वह कभी अपनी देह के प्रति सचेत न रहता, इतना पूर्णतः वह गोविन्द के चिन्तन में खोया रहता। कभी उस अन्तर्दृष्टि के सहसा लुप्त हो जाने पर वह व्याकुल होकर रोता; फिर भगवान् का स्मरण पाकर वह ठहाका मारकर हँसता; कभी ऊँचे स्वर से उनकी स्तुति गाता, कभी बिना किसी संकोच के नाचता; कभी स्वयं को अपने प्रियतम भगवान् के साथ एक मानकर उनकी लीलाओं का अनुकरण करता; और कभी पूर्णतः निश्चल बैठ जाता, उसकी देह के रोम खड़े हो जाते तथा अधमुँदी आँखें आनन्दाश्रुओं से भर जातीं। ऐसी प्रेममयी सेवा से उसने शुद्ध भक्ति का धन पा लिया था, और उसकी शान्ति उसके साथी असुर-बालकों के मन को भी सान्त्वना देती थी।



अपने खेलौने छोड़कर बालक प्रह्लाद भगवान् के प्रेम में लीन है — कभी रोता, कभी हँसता, कभी गाता तथा नाचता भक्ति में, अपने चारों ओर के संसार से अनजान (SB 7.4.37-42)।

युधिष्ठिर का विस्मय

ऐसे घर में ऐसे पुत्र के जन्म की बात सुनकर युधिष्ठिर विस्मय से भर उठे। उन्होंने नारद से पूछा कि एक पिता अपने ही शिशु से — इतने आज्ञाकारी, इतने कोमल तथा इतने समर्पित पुत्र से — कैसे घृणा करने लगा और उसका वध करने तक पर उतारू हो गया? साधारण पिता, चाहे उनमें जो भी दोष हों, अपने कर्तव्यनिष्ठ पुत्रों पर, जो उन्हें ईश्वर के समान मानते हैं, हत्यारे भाव से नहीं टूट पड़ते। उन्होंने ऋषि से प्रार्थना की कि उनकी जिज्ञासा दूर करें और बताएँ कि पिता की घृणा किस प्रकार उस बालक के विनाश की ओर मुड़ी।



देवर्षि नारद सम्राट युधिष्ठिर को प्रह्लाद की कथा सुनाते हैं, जो इस पर विस्मित हैं कि एक पिता इतने कोमल तथा समर्पित पुत्र के प्रति हत्यारी घृणा में कैसे मुड़ सका (SB 7.4.43-46)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. संसार की विजय आत्मा को नहीं जीत सकती। हिरण्यकशिपु स्वर्ग, पृथ्वी तथा हर प्राणी-वर्ग को जीत लेता है, फिर भी शान्ति नहीं पाता, क्योंकि वह अपनी ही इन्द्रियों और मन का दास बना रहा। भागवत चुपचाप सिखाता है कि सच्चा आधिपत्य भीतरी है, और जो आत्मा स्वयं को छोड़ सब कुछ पर शासन करती है, वह दास ही रहती है (SB 7.4.19)।
2. भगवान् घड़ी निश्चित करते हैं, भय नहीं। जब लोक पुकारते हैं, तो भगवान् घबराहट में कार्य नहीं करते; वे धर्मात्माओं को आश्वस्त करते हैं, असुर के पतन की ठीक नैतिक घड़ी बताते हैं, और प्रतीक्षा करने को कहते हैं। दिव्य उद्धार अपने ही पूर्ण समय पर आता है (SB 7.4.25-28)।
3. भक्ति सबसे असम्भव भूमि में भी खेल सकती है। प्रह्लाद एक असुर के रूप में, एक असुर के महल में, ईश्वर के सबसे बड़े शत्रु के यहाँ जन्म लेता है — और फिर भी समस्त शास्त्रों के परम भक्तों में से एक बन जाता है। कोई जन्म, कोई परिस्थिति भगवान् की कृपा को बाहर नहीं रख सकती (SB 7.4.30-33)।
4. शुद्ध प्रेम संसार के प्रति उदासीन बना देता है। प्रह्लाद अपने खिलौने छोड़ देता है और अपनी देह तक भूल जाता है, इतना पूर्णतः वह भगवान् के चिन्तन से ग्रस्त है। उसकी लीनता दिखाती है कि जीवन का परम लक्ष्य संसार को जीतना नहीं, अपितु ईश्वर द्वारा हर लिया जाना है (SB 7.4.37-42)।
5. किसी भी सांसारिक शक्ति से भक्त के विरुद्ध किया गया अपराध सुरक्षित नहीं रह सकता। हिरण्यकशिपु के वरदान स्वयं ब्रह्मा से प्राप्त थे, फिर भी भगवान् घोषित करते हैं कि जिस क्षण वह अपने ही समर्पित पुत्र के विरुद्ध मुड़ेगा, वे उसकी रक्षा नहीं करेंगे। तपस्या तथा ऐश्वर्य किसी भी शुद्ध हृदय के आहत होते ही कुछ भी सुरक्षित नहीं रख पाते (SB 7.4.27-28)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

यह अध्याय दो जीवनों को अगल-बगल रखता है, और हमें चुनने देता है कि हम कौन-सा गढ़ रहे हैं। पिता के पास वह सब है जो संसार दे सकता है, और वह उसमें से किसी का भी उपभोग नहीं कर सकता; पुत्र ने अपने बचपन के खिलौने तक त्याग दिए हैं और आनन्द में डूबा है। हिरण्यकशिपु की बेचैनी वास्तव में स्वर्ग या इन्द्र के सिंहासन के विषय में नहीं है — यह हर उस हृदय की बेचैनी है जो पूर्णता उसमें खोजता है जिसे वह पकड़ तथा नियन्त्रित कर सकता है। प्रह्लाद की शान्ति भी उसकी परिस्थितियों के विषय में नहीं है — वह तो, आखिर, एक अत्याचारी के घर में एक बालक ही है। उसकी शान्ति उस दिशा से आती है जिधर उसका हृदय मुड़ा है। हमारे पास हिरण्यकशिपु के साम्राज्य का विकल्प विरले ही होता है, पर प्रह्लाद की दिशा का विकल्प सदा रहता है: साधारण कार्यों के बीच भगवान् का स्मरण करना, उनके चिन्तन को अपने पाने तथा संचय में बाधा डालने देना, और यह जानना कि जो धन हम बाहर खोज रहे थे, वह सदा से भीतर ही प्रतीक्षा कर रहा था।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज एक साधारण कार्य चुनें — भोजन, टहलना, या हाथ में लिया कोई काम — और आरम्भ करने से पूर्व उसे भीतर ही भीतर भगवान् को अर्पित कर दें, जैसे प्रह्लाद गोविन्द के चिन्तन को अपने हर कार्य में साथ ले जाता था। उसे करते समय अपने मन को बार-बार, कोमलता से उनकी उपस्थिति की ओर लौटाएँ, भीतर दोहराते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” अपने दिन का एक छोटा-सा भाग, प्रह्लाद के समान, इससे जो पाया जा सके उसके लिए नहीं, अपितु केवल ईश्वर के स्मरण में जिएँ।

उपसंहार

सप्तम स्कन्ध का चतुर्थ अध्याय प्रह्लाद-चरित्र का वह महान कीलक है: एक अत्याचारी की भयंकर सम्पूर्ण विजय, एक ऐसे शिशु की शान्त सम्पूर्णता के साथ, जो भगवान् में लीन है। हिरण्यकशिपु का साम्राज्य सिद्ध करता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर आधिपत्य भी उस हृदय को शान्ति नहीं दे सकता जिसने कभी स्वयं को नहीं जीता, जबकि प्रह्लाद के भुला दिए गए खिलौने ऐसा धन प्रकट करते हैं जिसे कोई साम्राज्य नहीं खरीद सकता। भगवान् वह एक वचन पहले ही दे चुके हैं जो आगे की समस्त कथा को शासित करेगा: कोई भी आत्मा चाहे जितने वरदान धारण करे, वे उसी क्षण चूर हो जाते हैं जब वह आत्मा उनके भक्त के विरुद्ध मुड़ती है। हिरण्यकशिपु के सिंहासन तथा प्रह्लाद के अश्रु हमारे ही हृदयों को सिखाएँ कि सच्चा धन कहाँ है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), सप्तम स्कन्ध, चतुर्थ प्रवचन, पृष्ठ 661–666।
- शृंखला: Srīmad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-7-chapter-4-hiranyakasipu-terrorizes-the-universe-prahlada-born-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

